दैनिक जागरण
मननशीलता मनुष्य को गर्त में गिरने से बचाती है

भीड़ की खौफनाक हिंसा

झारखंड के सरायकेला-खरसावां जिले के एक गांव मे चोरी के आरोप में पकड़े गए युवक की भीड़ के हाथों पिटाई के बाद पुलिस हिरासत में मौत के मामले ने तूल पकड़ लिया है तो यह स्वाभाविक ही है। भीड़ की हिंसा के ऐसे मामले तूल पकड़ने ही चाहिए, क्योंकि वे विधि के शासन को नीचा दिखाने के साथ ही अराजक माहौल को भी बयान करते हैं। झारखंड की इस घटना को केंद्रीय मंत्री मुख्तार अब्बास नकवी ने जघन्य अपराध बताते हुए यह सही कहा कि लोगों को पीटकर नहीं, बल्कि गले लगाकर ही श्रीराम का जयघोष कराया जा सकता है। भीड़ ने चोरी कर रहे युवक को पकड़ कर ठीक किया, लेकिन यह बिल्कुल भी अच्छा नहीं किया कि उसने उसे पीट-पीटकर अधमरा करने के बाद पुलिस को सौंपा और इसके पहले उसे जयश्री राम बोलने के लिए मजबूर किया। यह अराजकता के नग्न प्रदर्शन के अलावा और कुछ नहीं। यह चिंता की बात है कि भीड़ की हिंसा के वैसे मामले बढ़ते जा रहे हैं जिनमें कानून एवं व्यवस्था को धता बताई जाती है। अब तो पुलिस, डॉक्टर और अन्य सरकारी-गैर सरकारी लोग भी भीड़ की हिंसा का शिकार बनने लगे हैं। यह एक खतरनाक संकेत है। इस तरह की घटनाएं यही बताती हैं कि कानून के शासन को अपेक्षित महत्व नहीं मिल रहा है। कानून हाथ में लेकर अराजक व्यवहार करने की इजाजत किसी को नहीं दी जा सकती, क्योंकि ऐसा व्यवहार शांति व्यवस्था को चुनौती देने के साथ ही देश की अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बदनामी भी कराता है।

केंद्र और राज्य सरकारों को इसके प्रति चेतना ही होगा कि भीड़ की हिंसा के मामले रुकें। इसके लिए पुलिस सुधारों पर ध्यान देना होगा। सारे देश का ध्यान खींचने वाली झारखंड की घटना में एक खराब बात यह भी हुई कि पुलिस ने चोरी के आरोप में बुरी तरह पिटे तबरेज अंसारी को समय पर अस्पताल ले जाने की सुध नहीं ली। आखिर पुलिस-प्रशासन की ओर से जो सक्रियता अब दिखाई जा रही है वह समय रहते क्यों नहीं दिखाई गई? भीड़ की अराजकता पर अंकुश लगाने के साथ ही उस प्रवृत्ति पर भी रोक लगानी होगी जिसके तहत हिंसक घटनाओं को रोकने के बजाय उनके वीडियो बनाकर उन्हें सोशल मीडिया पर अपलोड करना बेहतर समझा जाता है। ऐसे वीडियो माहौल खराब करने का ही काम करते हैं। भीड़ की हिंसा के प्रत्येक मामले की बिना किसी किंतु-परंतु निंदा होनी भी जरूरी है। पीड़ित अथवा हमलावर की जाति या फिर उसका मजहब देखकर उद्वेलित होना या न होना ठीक नहीं। तबरेज अंसारी के परिवार को न्याय मिले, इसकी चिंता करते समय यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि न्याय की दरकार मथुरा के उस लस्सी विक्रेता के परिवार को भी है जो चंद दिनों पहले भीड़ की हिंसा का शिकार बना है। हिंसा-हत्या के मामलों में अल्पसंख्यक-बहुसंख्यक का चश्मा चढ़ाकर प्रतिक्रिया व्यक्त करने की आदत उतनी ही खराब है जितनी यह कि अगर घटना भाजपा शासित राज्य में हो तो सीधे प्रधानमंत्री को कठघरे में खड़ा किया जाए और गैर भाजपा शासित राज्य में हो तो फिर स्थानीय प्रशासन से भी सवाल पूछने की जहमत न उठाई जाए।

बढ़ते बिहार का द्योतक

बिहार में अर्थव्यवस्था ने गति पकड़ी है। राजस्व वृद्धि का आवेग इस बात का द्योतक है कि कर और करेतर राजस्व, दोनों में यहां वृद्धि हुई है। वैसे सभी विभाग जिन पर कर वसूली की जिम्मेदारी है, सबने बेहतर प्रदर्शन किया है। लगभग दो दशक पूर्व जब बिहार से झारखंड अलग हुआ था तब यह धारणा बलवती हो गई थी कि अब चूंकि खनिज संपदा झारखंड के हिस्से में चली गई, इसलिए बिहार का विकास अवरुद्ध होगा। ऐसा हुआ नहीं। सरकार की दृढ़ इच्छाशक्ति ने बिहार को अपने पैरों पर खड़े होने का हौसला दिया और आज यह साबित हो गया कि यह राज्य किसी आश्रय का मोहताज नहीं है। कुछ चीजें ऐसी जरूर हैं, जो अनदेखी का शिकार बन गईं। इसमें राज्य की खनन नीति भी है। बालू को छोड़ कर दूसरे प्रकार के अन्य खनिजों का यहां अभाव है, लेकिन बालू खनन को लेकर भी ऊहापोह कायम है। इसके वितरण की भी व्यवस्था अभी प्रयोगात्मक दौर से ही गुजर रही है। बिहार में अर्थव्यवस्था की विकास दर हाल के वर्षों में ऊंची रही है। सबसे सुखद यह है कि बीते वित्तीय वर्ष में भी विकासमूलक व्यय को पूरा करने के लिए अधिशेष धनराशि उपलब्ध रही। राजस्व शेष का सकारात्मक होना राज्य की आर्थिक संपदा की मजबूती को प्रदर्शित करता है। बिहार में कारोबार बढ़ रहा है, जिससे यहां के लोगों की आमदनी भी बढ़ रही और पहले की तुलना में कर संग्रह भी बढ़ा है, लेकिन विकास का यह पैमाना समावेशी नहीं है। पटना की तुलना में बिहार के अन्य बड़े शहरों का जिस प्रकार का विकास होना चाहिए, वह नहीं दिख रहा है। सरकार को चाहिए कि वह अन्य बड़े शहरों पर भी फोकस करे। बहुत बड़े फैसले के तहत सरकार ने पारिवारिक बंटवारे के निबंधन को अप्रत्याशित रूप से सस्ता कर दिया। मात्र 100 रुपये के स्टांप शुल्क पर अब निबंधन हो जा रहा है, लेकिन इस योजना को जिस प्रकार का प्रोत्साहन मिलना चाहिए, वह अभी नहीं मिल सका है। अब जब सरकार नई बालू खनन नीति और खनिज नियमावली ला रही है तो उम्मीद की जानी चाहिए कि आम आदमी की जेब पर असर डाले बिना बालू को लेकर व्यवस्थित कारोबार सूबे में संचालित हो सकेगा।

स्वभाषा की सामर्थ्य पहचानने का समय

बद्री नारायण

जब हमारे प्रशासक अपनी भाषा में सोचेंगे तभी वे जनता के लिए मौलिक योजनाएं बना सकते हैं और तभी उन योजनाओं से व्यापक जन को सर्वाधिक लाभ हो सकेगा

केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक हिंदी साहित्यकार होने के साथ ही हिंदी में ज्ञान चिंतन के भी प्रबल पक्षधर हैं। हिंदी के प्रति उनका लगाव बार-बार अभिव्यक्त होता रहता है। बीते दिनों संसद में नई शिक्षा नीति के जरिये वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में हर हाल में आमूलचूल बदलाव की घोषणा करते हुए उन्होंने कहा कि मातृ भाषा का सम्मान किए बिना कोई भी देश प्रगति नहीं कर सकता। उन्होंने इस संबंध में भ्रम फैलाने की आलोचना करते हुए यह भी कहा कि नई शिक्षा नीति में सभी भारतीय भाषाओं को सम्मान ही नहीं, बल्कि हर कीमत पर उन्हें सशक्त बनाकर देश की प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया जाएगा।

वह हिंदी को मात्र भाषा नहीं, बल्कि संस्कृति मानते रहे हैं। हिंदी को गवर्नेंस की भाषा के रूप में उभारने के लिए भी वह काफी उत्सुक दिखते हैं। उनके इस भाव से कई महत्वपूर्ण सवाल उठते हैं जो भारतीय समाज एवं राष्ट्र के लिए व्यापक विमर्श खड़ा करते हैं। हम जैसे जो लोग समाज विज्ञान के क्षेत्र में कार्यरत हैं वहां ज्ञान एवं विमर्श की भाषा अभी भी मुख्यतः अंग्रेजी है। अंग्रेजी से किसी को कोई एतराज नहीं है। अंग्रेजी भाषा शक्ति का उपयोग भी भारतीयों की शक्ति बढ़ाता है, लेकिन हिंदी में ज्ञान एवं चिंतन को प्रोत्साहन देना आज की बड़ी जरूरत है।

आत्मभाषा में ही आत्मज्ञान या स्वज्ञान का विकास संभव है। केन्या के प्रसिद्ध उपन्यासकार अंगुगीबाथ्योगें ने 'डिकालोनाइजिंग माइंड' नाम से एक बेहद महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। इसमें वह आत्म मुक्ति का रास्ता अपनी भाषा को मानते हैं। आत्म मुक्ति का तात्पर्य सोचने, समझने, कहने और सुनने के स्वराज की प्राप्ति से है और यह अपनी भाषा में ही संभव हैं। भारतीय समाज में विकास की पहली जरूरत है कि सोचने, समझने एवं विभिन्न कार्यों को करने के लिए औपनिवेशिक परिवेश से मुक्त मनो-मस्तिष्क का विकास, जिसे हमने अंग्रेज उपनिवेशवाद की हमारी अस्मिता में गहराई तक प्रवेश के कारण खो दिया है। इसे किसी भी हाल में पुराने ढर्रे पर वापस लाना ही होगा। हालांकि उसके लिए वापसी की यह प्रक्रिया उतनी आसान नहीं है। इसे संभव बनाने के लिए हमें आत्म-विस्मृति के दंश से निकलना होगा। औपनिवेशिकता की गुलामी में जकड़े देश आमतौर पर 'आत्म विस्मृति' के शिकार रहे हैं। उनकी आजादी की एक बड़ी लडाई 'आत्म विस्मृति' से मुक्ति की लड़ाई रही है।

असल में होता यह है कि हमें नीतियां उनके लिए बनानी हैं और उस समाज का विकास करना है जो अंग्रेजी नहीं जानता। वह तबका अपनी भाषा में सोचता है और वही उसकी आकांक्षाओं की भाषा है। ऐसी जनता के लिए नीतियां बनाने वालों की सोचने-समझने की भाषा अभी भी अंग्रेजी है। ऐसे में नीतियों, विकास के परिप्रेक्ष्य एवं विकास के लिए जरूरतमंद समूह के बीच एक खाई चौड़ी हो जाती है। हमें जरूरत इस बात की है कि हम जनता की आकांक्षा की भाषा के साथ स्वयं को जोड़ें। हिंदी क्षेत्र की जनता के लिए तो हिंदी उनके विकास, प्रशासन एवं चिंतन की भाषा होकर ही उन्हें सतत एवं सर्वांगीण विकास से जोड़ सकती है।

अवधेश राजपूत

हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषी समाज के बीच संवाद बढ़ रहा है। संभव है कि आने वाले दिनों में कोई उड़िया भाषा भाषी अपनी आकांक्षाएं तो उड़िया भाषा में जाहिर करे, लेकिन उनका संप्रेषण हिंदी में करे। हालांकि हिंदी अपने विकास के लिए किसी सरकारी प्रयास की मोहताज नहीं है, लेकिन यदि भारत सरकार का मानव संसाधन विकास मंत्रालय हिंदी को ज्ञान, चिंतन, विकास एवं प्रशासन की भाषा बनाने के लिए अगर कोई कदम उठाए तो हमें उसका स्वागत करना चाहिए। हिंदी के साथ एक बड़ी खूबी यह है कि वह मल्टी फंक्शन की भाषा हैं। एक ही साथ वह भारत के एक बड़े समाज की अस्मिता से जुड़ी भाषा है। दूसरी ओर वह बहुभाषीय भारतीय समाज में संप्रेषण की भाषा का रूप ले रही है। वह एक बड़े बाजार की भाषा भी है। शायद इसीलिए इंग्लिश आज हिंग्लिश यानी हिंदी और अंग्रेजी का मिला-जुला रूप बनने के लिए मजबूर है। तीसरी बात यह है कि हिंदी भारतीय समाज में आर्थिक जीवन प्रक्रिया का हिस्सा है। समस्या सिर्फ यह है कि राज भाषा होने के बावजूद भारतीय राज्य की कार्य प्रक्रिया में हिंदी सर्वाधिक उपेक्षित भाषा के रूप में है। वह एक खानापूर्ति की भाषा बनकर रह गई है।

भारतीय नौकरशाही एवं शासक समूह का एक बड़ा हिस्सा आज भी अंग्रेजीदां है जबकि आम जनमानस को ऐसी नौकरशाही की दरकार है जो उसकी भाषा में योजनाएं बना सके। उसकी भाषा में उससे संवाद करे और यह तभी संभव है जब हमें हमारे मानस का स्वराज्य प्राप्त होगा। जब हमारे प्रशासक आत्म भाषा में सोचेंगे तभी वे अपनी जनता के लिए मौलिक योजनाएं बना सकते हैं और तभी उन योजनाओं से व्यापक जन को सर्वाधिक लाभ हो सकेगा।

इस प्रकार भाषा सिर्फ संवाद का माध्यम नहीं है, बल्कि अस्मिता, संस्कृति से जुड़ने और मानसिक गुलामी से स्वयं को मुक्त करने का माध्यम भी है। मानसिक गुलामी से मुक्ति नए भारत के निर्माण का आधारभूत तत्व है। 'मानसिक गुलामी से मुक्ति' की प्रक्रिया एक लंबी प्रक्रिया है जिसमें 'स्वभाषा' की बड़ी भूमिका होती है। स्वभाषा की शक्ति हमें तभी मिलेगी जब औपनिवेशिक भाषा द्वारा सृजित 'हीन भावना' से हम मुक्त हो पाएंगे।

आज एक तरफ गांव-गांव में कान्वेंट स्कूल खुल रहे हैं तो दूसरी ओर हमारे सरकारी स्कूलों की शृंखला कमजोर होती जा रही है जहां से हमें हिंदी माध्यम में पढ़ने और सोचने की शिक्षा मिलती थी। ऐसे में यह जरूरी है कि केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय अन्य भारतीय भाषाओं को सम्मान देने के साथ ही हिंदी माध्यम में सोचने, पढ़ने, लिखने एवं परिकल्पना करने वाली शिक्षा-प्रणाली को प्राथमिकता दे।

पूरी दुनिया के विकसित मुल्कों का एक बड़ा हिस्सा गैर-अंग्रेजी भाषी होने के साथ-साथ आत्म भाषा में अपने ज्ञान एवं विकास की गतिकी को सृजित एवं प्राप्त कर रहा है। ऐसे में विकसित हो रहा भारतीय राष्ट्र जब स्वभाषा में अपनी शक्ति की मौलिक कल्पना करेगा तभी उसे उसके विकास की सच्ची गतिकी प्राप्त हो सकेगी। हिंदी पट्टी के विकास की पहली शर्त ही है कि स्वभाषा में उसके वजूद को परिकल्पित किया जाए। तभी हिंदी के महत्वपूर्ण कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की यह कामना पूरी हो सकेगी-'शक्ति की करो मौलिक कल्पना।' ध्यान रहे कि यह कल्पना ही औपनिवेशिकता से प्रताड़ित भारत के बरक्स नया एवं अपना भारत विकसित कर सकेगी। यह अपना भारत ही भविष्य का भारत हो सकेगा।

(लेखक गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, प्रयागराज के निदेशक हैं)

response@jagran.com

संसद में संसाधनों की बर्बादी

राजीव सचान

22 विधेयकों को लोकसभा से फिर पारित कराने की मजबूरी संसदीय कामकाज पर एक सवाल ही है

लोकसभा चुनाव नतीजों के बाद से भाजपा के प्रबल बहुमत को जोर-शोर से रेखांकित करते हुए भले ही विपक्ष को दुर्बल बताया जा रहा हो, लेकिन सच यह है कि वह उतना भी असहाय नहीं जितना प्रचारित किया जा रहा है। शायद इस सच्चाई से सत्तापक्ष भी परिचित है और इसीलिए प्रधानमंत्री ने गैर विवादित मुद्दों को प्राथमिकता देने की बात कही। उनके इस बयान का एक अर्थ यह भी निकाला जा रहा है कि तीन तलाक संबंधी विधेयक के लोकसभा से पारित हो जाने के बावजूद वह राज्यसभा में जल्द आने वाला नहीं है। इसकी एक वजह यह भी है कि तेलुगु देसम पार्टी के चार राज्यसभा सांसदों के भाजपा में शामिल हो जाने के बाद भी इस सदन में सत्ताधारी दल बहुमत के आंकड़े से दूर ही है। इसके अतिरिक्त भाजपा की सहयोगी पार्टी जद-यू तीन तलाक संबंधी विधेयक को समर्थन देने से इन्कार कर रही है और फिलहाल इस बारे में कुछ कहना कठिन है कि अन्नाद्रमुक एवं बीजू जनता दल इस विधेयक को राज्यसभा में समर्थन देना पसंद करेंगे या नहीं? साफ है कि ऐसी प्रतीत कराना सही नहीं कि सत्तापक्ष के प्रबल बहुमत के आगे विपक्ष बेचारा है। राज्यसभा में अपने बहुमत के बल पर विपक्ष अभी भी लोकसभा से पारित विधेयकों को रोकने अर्थात सरकार के एजेंडे को पटरी से उतारने में समर्थ है। इसे इस तरह और अच्छे से समझा जा सकता है कि पिछली लोकसभा से पारित 22 विधेयक राज्यसभा की मंजूरी नहीं हासिल कर सके। इनमें तीन तलाक संबंधी विधेयक भी है और नागरिकता से जुड़ा विधेयक भी। राज्यसभा की अड़ंगेबाजी का शिकार हुए इन सभी 22 विधेयकों को लोकसभा से फिर से पारित कराना होगा। इसी क्रम में बीते दिनों तीन तलाक संबंधी विधेयक को नए सिरे से पारित कराया गया है।

यदि लोकसभा प्रतिदिन दो लंबित विधेयकों को भी पारित करे तो कम से कम 10-11 दिन का समय लगेगा। जो काम हो चुका हो उसे फिर से करना समय और संसाधन की बर्बादी ही है, लेकिन इस बर्बादी से दो-चार होने के अलावा और कोई उपाय नहीं। अच्छा हो कि कोई यह हिसाब लगाए कि जिस संसद की कार्यवाही में प्रति मिनट लाखों रुपये खर्च होते हैं वहां 22 विधेयकों को फिर से पारित कराने में कितना रुपया व्यर्थ में खर्च होगा? निःसंदेह लोकतांत्रिक देशों को लोकतंत्र की भी कीमत चुकानी होती है, लेकिन आखिर यह कितना उचित है कि राज्यसभा की अड़ंगेबाजी के कारण लोकसभा को वही काम फिर से करना पड़े जो वह पहले कर चुकी है? इस प्रश्न पर यह प्रतिप्रश्न खड़ा हो सकता है कि क्या सकारात्मक विरोध को अड़ंगेबाजी कहा जा सकता है? बिल्कुल नहीं कहा जा सकता, लेकिन क्या कोई यह कह

सकने की स्थिति में है कि राज्यसभा जब-जब लोकसभा के विपरीत रवैया अपनाती है तब-तब वह सही ही होती है? हो सकता है कि इतने बड़े देश में कोई ऐसा कुछ कह भी दे, लेकिन फिलहाल उस दिन का स्मरण करते हैं जब राज्यसभा ने जुवेनाइल जस्टिस एक्ट यानी किशोर न्याय अधिनियम से संबंधित विधेयक पारित किया था। चूंकि राज्यसभा में विपक्षी दल के सांसद इस विधेयक के कुछ प्रावधानों से सहमत नहीं थे इसलिए वह एक अर्से से वहां अटका हुआ था।

किशोर न्याय अधिनियम में संशोधन कर यह बदलाव किया गया था कि जघन्य अपराध के मामलों में 16 से 18 साल के किशोरों के खिलाफ भी बालिगों की तरह मुकदमा चलाया जा सकेगा। जब विपक्ष के रवैये से यह साफ था कि वह इस विधेयक को मंजूरी देने वाला नहीं है तभी यह खबर आई कि देश को दहलाने वाले निर्भया कांड का नाबालिग दोषी रिहा हो गया है। इस रिहाई ने दिल्ली ही नहीं, देश के लोगों को आक्रोशित किया। दिल्ली में जंतर-मंतर पर इस रिहाई के खिलाफ प्रदर्शन होने लगे और निर्भया के माता-पिता उन विपक्षी दलों को कठघरे में खड़ा करने लगे जो किशोर न्याय अधिनियम के खिलाफ अड़े थे। उन्होंने कुछ अन्य विपक्षी नेताओं से मिलकर अपनी आपत्ति भी जताई। लोगों का गुस्सा बढ़ता देखकर विपक्ष विरोध करना भूलकर विधेयक के समर्थन में आ गया और राज्यसभा में किशोर न्याय विधेयक पर चर्चा के लिए तैयार हो गया। एक दिन पहले जो विपक्षी नेता इस विधेयक को टालने पर अड़े थे वे 22 दिसंबर 2015 को उच्च सदन में यह कहते दिखे, ''यह बहुत ही महत्वपूर्ण बिल है। निर्भया केस दिल को दहलाने वाला और बेहद खौफनाक था...।'' इन बदले सुरों का मूल कारण निर्भया के नाबालिग हत्यारे की रिहाई से उपजा आक्रोश ही था। विधेयक पर चर्चा के समय निर्भया के माता-पिता भी राज्यसभा की दर्शक दीर्घा में बैठे थे। पता नहीं उनकी उपस्थिति ने विपक्ष पर कितना दबाव बनाया, लेकिन यह साफ हो गया था कि जो विधेयक 7 मई 2015 को लोकसभा से पारित हो गया था उसे राज्यसभा में 22 दिसंबर 2015 तक रोके रखने की कोई ठोस वजह नहीं थी।

जैसे यह नहीं कहा जा सकता कि सत्तापक्ष के पास ही हर तरह की कानूनी समझ होती है वैसे ही यह भी नहीं कह सकते कि हर मसले पर विपक्ष नीर-क्षीर विवेक से ही फैसला करता है। विभिन्न विधेयकों पर सत्तापक्ष और विपक्ष में मतभेद होने स्वाभाविक हैं। मतभेद की स्थिति में जरूरी यह है कि बीच का कोई रास्ता निकाला जाए ताकि न तो नए कानूनों के निर्माण में देरी हो और न ही उनमें संशोधन-परिवर्तन का काम थमे। मुश्किल यह है कि इसके बजाय विपक्ष लोकसभा से पारित विधेयकों की राह रोक लेना पसंद करता है। संविधान निर्माताओं ने यह कल्पना नहीं की थी कि राज्यसभा विधायी कार्यों में बाधक बनेगी, लेकिन बीते कुछ समय से विपक्ष अपने बहुमत के बल पर जो कुछ रोक सको उसे रोक लो वाले रवैये का प्रदर्शन कर रहा है। यह रवैया सत्तापक्ष के शासन करने के अधिकार पर अड़ंगा ही है। निःसंदेह राज्यसभा लोकसभा से पारित विधेयकों पर मुहर लगाने वाले सदन के तौर पर तब्दील नहीं हो सकता, लेकिन उसे मुहर लगाने से हर हाल में बचने वाले सदन के रूप में भी नहीं उभरना चाहिए। कहना कठिन है कि सत्तापक्ष को राज्यसभा में कब बहुमत हासिल होगा, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं कर सकते कि मोदी सरकार समेत अन्य गैर कांग्रेसी सरकारों को राज्यसभा में कभी बहुमत हासिल नहीं रहा। यदि आने वाले समय में मोदी सरकार को राज्यसभा में बहुमत हासिल हो जाता है तो वह ऐसी सहूलियत पाने वाली पहली गैर कांग्रेसी सरकार होगी। बेहतर होगा कि ऐसा होने के पहले ही पक्ष-विपक्ष के रिश्ते ऐसे हो जाएं कि कोई भी विधेयक बेवजह न अटके।

(लेखक दैनिक जागरण में एसोसिएट एडीटर हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

नियम

सकारात्मक सद्गुणों का अभ्यास नियम कहलाता है या विहित कार्यों को करने का अनुशासन नियम कहलाता है। सूर्योदय से पूर्व जागकर नित्यकर्म करना, ईश्वर का ध्यान करना, पूर्वाह्न में भोजन, मध्याह्न में सांसारिक लोक के कार्य करना, सायंकाल चिंतन-मनन करना और रात्रि में समय से सो जाना व्यक्तिगत नियम है। श्रेष्ठ जनों का आदर, अनुकरण तथा छोटों के लिए आदर्श प्रस्तुत करना पारिवारिक कर्तव्य है। वृक्ष, नदी, पर्वत, चींटी आदि से लेकर पशु, पक्षी और मनुष्य के हित में कार्य करना सामाजिक नियम है। राष्ट्र के संविधान का पालन करना राष्ट्रीय नियम है। इस प्रकार मनुष्य नियम का पालन कर इस लोक में प्रगति और परलोक में मुक्ति प्राप्त करता है।

विधिपरक संयम को नियम कहा जाता है। पतंजलि के अनुसार नियम पांच प्रकार के हैं-शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान। शौच बाह्य और आंतरिक दो प्रकार का है। शरीर, आचरण एवं आहार की शुद्धि बाह्य शुद्धि है। जल, साबुन आदि से शरीर की शुद्धि, स्वार्थत्याग से आचरण की शुद्धि, न्याय से उपार्जित धन से सात्विक पदार्थों के पवित्रतापूर्वक सेवन से आहार की शुद्धि होती है। अहंकार, राग-द्वेष, ईर्ष्या, भय, काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि आंतरिक दुर्गुणों के त्याग से आंतरिक शौच होता है। समुचित प्रयास से जो भी प्राप्त हो उसमें संतुष्ट रहना संतोष है। मन और इंद्रियों के संयमरूप धर्मपालन करने के लिए कष्ट सहन करना एवं व्रत आदि का पालन करना तप है। वैदिक साहित्य, धर्मग्रंथ, श्रुतियों का अध्ययन, इष्टदेवता के नाम का जप, किसी आप्त पुरुष के सत्कर्मों की महिमा का गान करना स्वाध्याय है। मन, वाणी और कर्म द्वारा सृष्टि के नियंता ईश्वर के लिए, ईश्वर के अनुकूल ध्यान करना ही ईश्वरप्रणिधान है।

अत्रिसंहिता में दस नियम बताए गए हैं-शौच (शुद्धि), पूजन, तप, दान, वेदों का अध्ययन, इंद्रियनिग्रह, व्रत, मौन, उपवास और स्नान इत्यादि। श्रीमद्भागवत में द्वादश नियम उल्लिखित हैं-शौच, जप, तप, होम, श्रद्धा, आतिथ्य, अर्चन, तीर्थाटन, परोपकार, ईश्वर भावना, तुष्टि और आचार्य की सेवा। यह नियमबद्धता व्यक्ति से लेकर समष्टि की प्रगति में सहायक होती है इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को नियम का पालन करना चाहिए।

डॉ. बिपिन पांडेय

नशाखोरी के खिलाफ सख्ती जरूरी

अरविंद जयतिलक

वर्ष 2011 में केवल तंबाकूजनित बीमारियों के इलाज पर देश के सकल घरेलू उत्पाद का 1.16 फीसद यानी एक लाख पांच हजार करोड़ रुपये खर्च हुए

एक कल्याणकारी राज्य की जिम्मेदारी है कि वह अपने नागरिकों को शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रखे। कहा भी जाता है कि एक स्वस्थ एवं समृद्ध राष्ट्र के निर्माण के लिए उसके नागरिकों का शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक है, पर यह तभी संभव होगा जब राज्य अपने नागरिकों को उचित स्वास्थ्य उपलब्ध कराने के लिए नशाखोरी पर लगाम कसेगा। किसी से छिपा नहीं है कि बिगड़ते स्वास्थ्य के लिए सर्वाधिक रूप से शराब और तंबाकू उत्पाद ही जिम्मेदार हैं जिसके सेवन से देश में हर वर्ष लाखों लोगों की मौत हो रही है। 2006 में सुप्रीम कोर्ट कह चुका है कि केंद्र एवं राज्य सरकारें संविधान के 47वें अनुच्छेद पर अमल करें यानी शराब की खपत घटाएं, लेकिन सरकारों का रवैया ठीक इसके उलट है। अच्छी बात यह है कि बिहार सरकार ने शराब की बिक्री पर पूर्णतः प्रतिबंध लगा दी है। बेहतर होगा कि तंबाकू उत्पादों पर भी पूर्णतः प्रतिबंध लगाए। अन्य राज्य सरकारों को भी ऐसा ही कदम उठाना चाहिए।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की मानें तो तंबाकू के सेवन से प्रतिवर्ष 60 लाख लोग मौत के मुंह में समा जाते हैं। साथ ही लोगों को तरह-तरह की बीमारियों का सामना करना पड़ता है। यही नहीं दुनिया में कैंसर से होने वाली मौतों में 30 फीसद लोगों की मौत तंबाकू उत्पादों के सेवन से होती है। जागरूकता की कमी और सिगरेट कंपनियों के प्रति नरमी का नतीजा है कि तंबाकू सेवन से मरने वाले लोगों की तादाद बढ़ती जा रही है। लोगों को अपनी कमाई का एक बड़ा हिस्सा तंबाकू सेवन से उत्पन्न बीमारियों से निपटने में खर्च करना पड़ रहा है। उदाहरण के तौर पर स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट की मानें तो वर्ष 2011 में केवल तंबाकूजनित बीमारियों के इलाज के नाम पर देश के सकल घरेलू उत्पाद का 1.16 फीसद यानी एक लाख पांच हजार करोड़ रुपये खर्च हुए। गौर करें तो यह धनराशि केंद्र तथा राज्य सरकारों द्वारा स्वास्थ्य के क्षेत्र में 2011-12 में जितना खर्च किया गया उससे तकरीबन 12 फीसद अधिक है। देश की जीडीपी का यह हिस्सा जो तंबाकूजनित बीमारियों पर खर्च हो रहा है अगर उसे गरीबी और कुपोषण मिटाने पर खर्च किया जाय तो उसका सकारात्मक परिणाम देखने को मिलेगा, लेकिन विडंबना है कि इस पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

यह सही है कि सरकार द्वारा सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान को रोकने के लिए कानून और कठोर अर्थदंड का प्रावधान किया गया है, लेकिन कानून के बावजूद भी बस स्टैंड, रेलवे स्टेशन, अस्पतालों एवं अन्य सार्वजनिक स्थलों पर विशेष रूप से युवाओं को धूम्रपान करते देखा जा सकता है। यह स्थिति इसलिए बनी हुई है कि कानून का कठोरता से पालन नहीं हो रहा है। उचित होगा कि धूम्रपान के खिलाफ न सिर्फ कड़े कानून बनाए जाएं, बल्कि उसका सही ढंग से क्रियान्वयन भी हो। उचित होगा कि सरकार तंबाकू उत्पादों के पैकेटों पर 85 फीसद सचित्र चेतावनी छापने के नियम का कड़ाई से पालन कराए और साथ ही तंबाकू उत्पादों की बिक्री बंद करने की दिशा में भी विचार करे।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

संकीर्ण राजनीति

राष्ट्रीय प्रतीक का निरंतर निरादर शीर्षक से लिखे अपने लेख में हृदयनारायण दीक्षित ने वंदे मातरम का निरादर करने वालों को इसके इतिहास के बारे में बताकर समझाने की कोशिश की है। मुझे लगता है कि भैंस के आगे बीन बजाना बेकार है। इंसान किसी भी धर्म का क्यों न हो, उसके दिल में दूसरे धर्मों के प्रति सम्मान और जिस देश में जीवन-यापन करता हो, उस देश के प्रति श्रद्धा और देशभक्ति होना ही इंसानियत होती है और इंसानियत से बड़ा कोई धर्म नहीं होता है। मुस्लिम समाज के कुछ लोगों ने अपनी झूठी शान की खातिर बेवजह के मुद्दों को हवा देकर सारे मुस्लिम समाज की छवि धूमिल करके रख दी है। जब भारत के संविधान ने मुस्लिम समाज को एक समान अधिकार और कर्तव्य दिए हैं और मुस्लिम समाज इनका फायदा भी अपने हित के लिए भी उठाता है तो फिर संविधान के राष्ट्रीय प्रतीक राष्ट्रगीत से परहेज क्यों? राष्ट्रगीत पर जो रह-रहकर विवाद खड़ा किया जाता है, उसके पीछे सिर्फ और सिर्फ राजनीतिक रोटियां सेंकना ही कुछ लोगों का मकसद होता है। इस मुद्दे के पीछे विशुद्ध राजनीति है, न कि इस्लाम का भला। जिस देश बसेरा करना, जिस देश का अन्न खाना उसके प्रति प्रेम भावना न रखना गद्दारी की निशानी है।

raju09023693142@gmail.com

देश भी ताकतवर बने

खुशी की बात है कि ब्रिटिश हेराल्ड के रीडर्स पोल-2019 ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी को अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप, रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन और चीन के राष्ट्रपति शी चिनफिंग को पछाड़ते हुए दुनिया का सबसे ताकतवर नेता माना है। यह हम सब के लिए गर्व की बात है। वास्तव में मोदी जमीनी और अनुभवी नेता हैं, जिन्हें प्रायः हर व्यक्ति के बारे में अच्छे से मालूम है। लोकसभा में प्रचंड बहुमत मिलने से उनकी सरकार की स्थिति भी मजबूत है। इस नई ऊर्जा के बाद उन्हें अब देश को और ताकतवर बनाने की जरूरत है। इसके लिए उन्हें रोजगार, जनसंख्या नियंत्रण, सुनियोजित विकास और पर्यावरण संरक्षण आदि पर युद्ध स्तर पर कार्य करना होगा। देश में संसाधनों और जनशक्ति की कोई कमी नहीं है। कमी है तो सिर्फ नीति और नीयत की। देश की जनता को अब मोदी से बड़ी उम्मीदें हैं। आशा है वे इसे पूरा करने में सफल होंगे।

वेद मामूरपुर, नरेला

छह दिनों तक खोले जाएं कार्यालय

3 जून, 1985 को तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी की सरकार ने केंद्र सरकार के अंतर्गत आने वाले कार्यालयों के कार्य दिवसों की संख्या सप्ताह में छह दिन से घटा कर पांच दिन कर दिया था। इस दौरान प्रतिदिन के काम में एक घंटे का इजाफा कर दिया गया। उपरोक्त प्रणाली को लागू करने के पीछे उनकी मंशा थी कि इस तरह से बिजली की बचत होगी और कर्मचारियों को एक दिन अतिरिक्त आराम करने को मिल जाएगा। तब सरकार के पास पर्याप्त कर्मचारी भी थे, लेकिन वर्तमान में निर्धारित समय में भी कार्यालयों में काम पूरा नहीं हो पा रहा है। कालांतर में जब बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था कोर्ट ग्रीष्म काल में कुछ दिनों के लिए बंद रहते थे, लेकिन आधुनिक समय में कूलर, पंखा और एयर कंडीशनर उपलब्ध हैं ऐसे में ग्रीष्मकालीन अवकाश का कोई औचित्य नहीं है। देश में सबसे निचली अदालत से लेकर उच्चतम न्यायालयों में मुकदमों की फाइलों का अंबार लगा हुआ है। तमाम सुविधा उपलब्ध होने पर भी फाइलों का निपटारा नहीं हो पा रहा है। ऐसे में केंद्र सरकार के सभी कार्यालयों को सप्ताह में छह दिन खोले जाने के आदेश होने चाहिए।

प्रेमपाल सिंह, मोहन नगर, पलवल

आमजन की भी हो भागीदारी

देश इन दिनों सूखे से जूझ रहा है। देश के कई प्रदेश आज भयंकर सूखे की चपेट में हैं।